Sangeet Galaxy e-Journal **UGC-CARE Listed**
Vol. 12, No.2 (July 2023) pp. 165-172 ISSN: 2319-9695

हिन्दुस्तानी क़व्वाली का सांगीतिक एवं साहित्यिक स्वरूप

डॉ. वैभव कैथवास
असिस्टेंट प्रोफेसर, गायन विभाग
एकलव्य विश्वविद्यालय, सागर रोड दमोह, मध्य-प्रदेश
Email: vaibshruti91@gmail.com

सारांश



क़व्वाली भारतीय संगीत की एक गायन शैली व प्राचीन विधा है. जिसको सामूहिक रूप से गाया जाता है. भारतीय संगीत में जिस प्रकार भिन्न-भिन्न गायकी का प्रादुर्भाव हुआ. जैसे- ध्रुपद, धमार, टप्पा, ख़्याल, ग़ज़ल, उसी प्रकार क़व्वाली को भी हिन्दुस्तानी संगीत व भारतीय संगीत में उरूज़ मिला. जिसका मूल उद्देश्य आध्यात्म को प्रदर्शित करना था. जो गुरूमत संगीत की रूपरेखा में आता था. जिसमें गुरू व पीर और अपने ईश्वर व अल्लाह की इबादत व अराधना की जाती थी. वैसे ही क़व्वाली सूफ़ी संगीत का एक परम्परागत रूप है. संगीत का यह स्वरूप भारतीय रागों और गायन की कुल, बसन्त, नात और रंग जैसी परम्परागत शास्त्रीय शैलियों पर आधारित है. क़व्वाली में अवधी, ब्रज, खड़ी बोली, फ़ारसी, पंजाबी जैसी क्षेत्रीय भाषाओं का अनुपम मिश्रण देखने को मिलता है. क़व्वाली का जन्म भारतीय संगीत के गर्भ से हुआ है. इसमें निबद्ध तथा अनिबद्ध दोनों प्रकार के संगीत का समावेश है. यह एक समूह गायन है, जिसमें एक या अनेक मुख्य स्वरों के साथ कई सहायक स्वर होते हैं. स्थाई गाते समय तालियों यानि लय का प्रयोग, अन्तरों में विभिन्न प्रकार से भाव दिखाते ताल रहित प्रस्तुति, प्रत्येक अन्तरे के पश्चात् बहुत सुन्दर तथा भावपूर्ण ढंग से पुनः स्थाई में आकर ताल वादन का प्रारम्भ, कुछ विशेष प्रकार की तान, बोलतान, आलाप तथा बोल आलाप आदि का सुन्दर प्रयोग यह आभास दिलाता है कि निबद्ध तथा अनिबद्ध संगीत का समावेश है. प्रस्तुत शोध पत्र में हिंदुस्तानी कव्वाली के सांगीतिक पक्ष और उसके साहित्यिक स्वरुप की चर्चा करने का प्रयास किया गया है.

मूल शब्द - क़ौल, बसन्त, नात, रंग, औलिया (फ़ना-फ़-शेख़), पीर (फ़ना-फ़-रसूल), फ़कीर (फ़ना-फ़-अल्लाह).

How to cite this article:

Kaithvas, Vaibhav. "Hindustani Qawwali ka Sangitik evam Sahityik Swaroop." *Sangeet Galaxy* 12(2): 165-172. www.sangeetgalaxy.co.in.

भारतीय क़व्वाली का सांगीतिक पक्ष: पंचललित कलाओं में संगीत और साहित्य का पृथक्-पृथक् स्थान है. दोनों खुद में श्रेष्ठ व पूर्ण मानी जाते हैं परन्तु दोनों में ही आंशिक रूप से एक दूसरे के प्रभाव यदा कदा परिलक्षित होते रहते हैं. भारतीय क़व्वाली गायन संगीत और साहित्य का उत्तम समागम स्थल है. क़व्वाली में बैठे श्रोता व उस गायकी से निस्बत रखने वाले जानसीन क़व्वाली गायन के दरिमियान जितना आनन्द संगीत का लेते हैं उतना ही आनन्द साहित्यिक के पक्ष का भी लेते हैं. क़व्वाली भारतीय संगीत की एक गायन शैली व प्राचीन विधा है. जिसको सामूहिक रूप से गाया जाता है. भारतीय संगीत में जिस प्रकार भिन्न-भिन्न गायकी का प्रादुर्भाव हुआ. जैसे- ध्रुपद, धमार, टप्पा, ख़्याल, ग़ज़ल, उसी प्रकार क़व्वाली को भी हिन्दुस्तानी संगीत व भारतीय संगीत में उरूज़ मिला. जिसका मूल उद्देश्य आध्यात्म को प्रदर्शित करना था. जो गुरूमत संगीत की रूपरेखा में आता था. जिसमें गुरू व पीर और अपने ईश्वर व अल्लाह की इबादत व अराधना की जाती थी.

"वैसे ही क़व्वाली सूफ़ी संगीत का एक परम्परागत रूप है. संगीत का यह स्वरूप भारतीय रागों और गायन की कुल, बसन्त, नात और रंग जैसी परम्परागत शास्त्रीय शैलियों पर आधारित है. क़व्वाली में अवधी, ब्रज, खड़ी बोली, फ़ारसी, पंजाबी जैसी क्षेत्रीय भाषाओं का अनुपम मिश्रण देखने को मिलता है.[1]

क़व्वाली का जन्म भारतीय संगीत से हुआ है. इसमें निबद्ध तथा अनिबद्ध दोनों प्रकार के संगीत का समावेश है. यह एक समूह गायन है, जिसमें एक या अनेक मुख्य स्वरों के साथ कई सहायक स्वर होते हैं. स्थाई गाते समय तालियों यानि लय का प्रयोग, अन्तरों में विभिन्न प्रकार से भाव दिखाते ताल रहित प्रस्तुति, प्रत्येक अन्तरे के पश्चात् बहुत सुन्दर तथा भावपूर्ण ढंग से पुनः स्थाई में आकर ताल वादन का प्रारम्भ, कुछ विशेष प्रकार की तान, बोलतान, आलाप तथा बोल आलाप आदि का सुन्दर प्रयोग यह आभास दिलाता है कि निबद्ध तथा अनिबद्ध संगीत का समावेश है.[2]

क़व्वाली के सन्दर्भ में हज़रत अमीर ख़ुसरो रहमतुल्लाअलैह का अहम योगदान है. जिनकी वजह से क़व्वाली को भारतीय संगीत में एक विशेष स्थान प्राप्त हुआ. "अमीर ख़ुसरों रहमतुल्लाअलैह ने क़व्वाली के अन्तर्गत नवीन राग रागिनियाँ बनायी थी. वे क़ौल, क़ल्बाना और नक़्शोगुल के नाम से प्रसिद्ध हैं. क़ौल शब्द अरबी भाषा का है तथा क़व्वाल भी अरबी शब्द है किन्तु क़व्वाली शब्द उर्दू का है. क़व्वाली का जन्म उसी समय हुआ था जब विभिन्न भाषाओं से शब्द संग्रहित करके उर्दू अपना निर्माण कर रही थी."[3] क़व्वाली के प्रस्तुति के सन्दर्भ में दो धाराओं का ज़िक्र होता है जो इस प्रकार हैं- सूफ़ियों में एक श्रेणी होती है जिसमें कहा जाता है कि -

हद-हद चले सो औलिया, बेहद चलै सो पीर.
और हद अनहद दोनौं चलैं, वाको नाम फ़कीर..

जिसका अर्थ है एक दायरे में चलता है औलिया और बिना दायरे में चलने वाला पीर और दायरे व बिना दायरे में दोनों तरह चलने वाला उसका नाम फ़कीर होता है. जिसमें तीन श्रेणियाँ आती हैं- औलिया (फ़ना-फ़ी-शेख़), पीर (फ़ना-फ़ी-रसूल) ,फ़कीर (फ़ना-फ़ी-अल्लाह), इसके आधार पर दो धाराओं का प्रवाह हुआ.

महफ़िल-ऐ-समा- समा में क़व्वाली की जो रूहानी महफ़िल होती थी जिसमें बड़े-बड़े पीर और उनके मुरीद बा-वज़ू होकर ईशा की नमाज़ के बाद बैठकर सुनते थे उस महफ़िल को महफ़िल-ऐ-समा कहा जाता था.

दरबार-ऐ-औलिया- इस महफ़िल का सम्बंध हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के आस्तानें से माना जाता है. जहाँ पर हर कोई आ जा सकता है किसी भी व्यक्ति के लिये मना नही होता है जिसमें सूफ़ियों में और फ़कीरों में दर्शन, श्रद्धा, आशीर्वाद और दुवाओं की बातें होती थी और लंगर चलता था व चलता है उस महफ़िल को दरबार-ऐ-औलिया के नाम से जाना जाता है.

क़व्वाली के ही प्रस्तुति के उद्देश्य पर बुर्खात कुरैशी जी का कहना है कि- "The Qawwali occasion as an assembly of divines has come to be conceptualized in terms of its equivalent in the worldy authority structure: The royal court of muslim rulers and its formal etiquette. It is implied in this concept that spiritual status does not contradict worldly status; rather, both must be incore – porated in the formal scheme of external manifestation. Accordingly, The Qawwali occasion Is a formal assembly, structured in accordance with the relative status of its participants, headed by the highest spiritual authority, and musically attended to by service professionals.

Both us mahfil-e-sama and us darbar-e-auliya, the conception of the qawwali occasion may be termed on occasion for sufi devotees to ewperience mystical arousal within the framework of the sufi spiritual hierarchy, through the mediam of mystical songs performd by professional functionaries. This conception, along with all its implications regarding performer, medium of performance and audience, informs the structure of the qawwali occasion with respect to setting as well as procedure."[4]

इसकी समग्रता में 'महफ़िल-ए-समा और दरबार-ए-औलिया' दोनों के रूप में क़व्वाली के मौके को सूफ़ी भक्तों के लिये सूफ़ी आध्यात्मिक पदानुक्रम के बंच (समूह) के भीतर धार्मिक उत्तेजना का अनुभव करने के लिये एक अवसर कहा जा सकता है. पेशेवर कलाकारों द्वारा प्रदर्शन किये गये आध्यात्मिक (रहस्यमयी, गूढ़, गुप्त) गीतों के माध्यम से यह धारणा कलाकार प्रदर्शन के माध्यम और दर्शकों के सम्बंध में इसके सभी निहितार्थों के साथ-साथ प्रक्रिया के सम्बंध में क़व्वाली के अवसर की संरचना को सूचित करता है.

क़व्वाली में सांगीतिक पक्ष की अगर बात करें तो इसमें काफ़ी बारीक़ियाँ मापी जाती हैं. 'संगीत में जो राग रागिनी गाने के जो नियम हैं उन सभी का ध्यान इस शैली में भी विशेष रूप से रखा जाता है. यानि वादी, सम्वादी स्वरों

का प्रयोग, विवादी स्वर का भी यथायोग्य राग की सुंदरता बढ़ाने के लिए प्रयोग, काव्य की प्रकृति के अनुरूप राग का चयन, इन विविधताओं का ख़ास ख़्याल क़व्वाली गायन में रखा जाता है. हम कह सकते हैं कि सभी रचनाएँ किसी न किसी राग में निबद्ध होती हैं. समप्राकृतिक रागों का आविर्भाव तथा तिरोभाव बहुत कुशलता से दिखाया जाता है.'

क़व्वाली की जन्म भूमि अजमेर मानी जाती है. 'अजमेर भारतीय संस्कृति की खान रही है. इस बारे में ठाकुर देसराज लिखते हैं कि मारवाड़ समूचे राजस्थान को कहा जाता है. मारू और मांड के विनियोग से मारवाड़ की उत्पत्ति हुई. जिस प्रदेश का नामकरण ही रागों के नाम से हुआ हो फिर वहाँ की लोक धुनों का क्या कहना. फिर वहाँ की गीत शैलियों में अनिवर्चनीय आनन्द और प्रभाव का होना कोई अचरज की बात नहीं. लोक गीतों में मांड गीत शैली जिसमें आलाप, छोटी-छोटी तानें, कण, खटका, मुर्की, मीड़, सूत का कमाल है. यहाँ वे आगे लिखते हैं कि यहाँ की लोक परम्परा में समस्त सांगीतिक तत्व पूर्ण रूपेण विकसित थे. जिनके अनुशीलन से क़व्वाली गीत शैली का जन्म हुआ, और लोक गीतों के सम्पर्क से क़व्वाली गीत शैली का जन्म हुआ, और लोक गीतों के सम्पर्क से यह शैली चिरंजीवी होती गई.' क़व्वाली भजन तथा कीर्तन एक दूसरे के पर्याय हैं. भजनों में भक्ति संगीत का जो पुट होता है उसी के दर्शन हमें क़व्वाली में भी प्राप्त होते हैं. यानि भक्ति संगीत क़व्वाली का आधार है.'[5]

'क़व्वाली के सांगीतिक तानेबाने को लेकर रेगुला बुर्खात कुरैशी जी द्वारा कुछ इस प्रकार टिप्पणी करती है कि 'Within the framework of the musical setting there is a structuring in to two complementary sections which, too, are repeatable. These basic units of formal organization are characterized by registral pitch emphasis. The first and principal section establishes tonic and tonality in the form of the main 'burden' of the item or song, by moving mainly in the lower part of the octave. The second complementary section establishes a tonal centre above the tonic, usually the upper tonic or else the fifth, by moving mainly in the upper part of the octave.[6]

क़व्वाली की जो संरचना व ढाँचा होता है उसके भीतर दो पूरक वर्गों की संरचना रहती है जो दोहराए जाने योग्य होती है. जिसमें पिच के आधार पर एक टोन सेट करते हैं और कुछ लोग उसके लोवर पार्ट पर जाते हैं और दूसरे भाग में जो पिच सेट रहता है उसके उपर जाते हैं कहने का तात्पर्य यह है कि क़व्वाली की महफ़िल में जो गायक होते है दो भाग में रखे जाते है जिसमें एक भाग नीचे सप्तक के लिये होते है और दूसरे तार सप्तक के लिये.'

'क़व्वाली में तान, पलटा, जमजमा, बोलबांट सभी कुछ होता है. यह सब "पदाश्रितागीत" जैसी प्राचीन गान शैली का प्रसाद है. जिसमें गेय रचना के शब्दों को ठाह, दुगुन इत्यादि के आधार पर गानें में विविधता और विचित्रता उत्पन्न करने का साधन बनाया जाता था. क़व्वालों की 'तनैती' यानि तानों के प्रयोग का काम स्वराश्रितागीति के समान है. जिसमें राग के आर्विभाव तथा तिरोभाव का प्रयोग क्षण मात्र में हो जाता है. इस प्रकार क़व्वाली का कोई अंश संगीत से खाली नहीं है.

क़व्वाली में ठेके के लिये डफ़, ढोलक, धामा, तबला का प्रयोग किया है. क़व्वाली दादरा, दीपचन्दी आदि तालों में गाई जाती है. मगर सिंध के कुछ क़व्वालों ने कहरवा ताल के एक ऐसे गुमकदार और चटकीले रूप को अपनाया कि ताल के उस रूप का नाम भी क़व्वाली पड़ गया.

'नगमातुलहिन्द में क़व्वाली ताल का इस प्रकार जिसमें दो ज़र्बें हैं. और प्रकृति इसकी कहरवे से थोड़ी धीमी रहती है.

1	2	3	4	|	5	6	7	8
धिन	धिन	धा	धा	|	तिन	तिन	धा	धा
X					2			

पंजाब में खास क़व्वाली कहरवा, दादरा, रूपक, धमाली, आड़ा चौताल तथा धमार ताल में गायी जाती है. मगर आम क़व्वाली में आजकल खेमटा ताल का प्रयोग होता है. जिसमें श्रोता मगन होकर नाचने थिरकने लग जाता है. स्वर देने के लिये आजकल हारमोनियम, बैंजो, सितार आदि का प्रयोग होता है. साथ ही रिदम के लिये हाथ से तालियों का प्रयोग किया जाता है. तकरीबन सभी रागों में क़व्वाली गायी जाती है. फिर भी कुछ ख़ास रागों में क़व्वाली गायन ज्यादा गायी जाती है. जैसे मालकौंस, पहाड़ी, तिलंग, भैरवी, तोड़ी, दरबारी, बिहाग, जोग आदि. पंजाब में क़व्वाली गायन में दो प्रमुख अंग है: पहाड़ी अंग एवं तिलंग अंग.[7]

क़व्वाली की सांगीतिक प्रस्तुति के सन्दर्भ में टिप्पणी करते हुये रेगुला बुर्ख़ात कुरैशी जी का कहना है कि 'Music and text are interlinked and fused in to one musical whole in which the text is the primary message- as opposed to both raga music is primary and its verbal delivery entirely subordinate, and recitation, where the text is primary and its musical delivery intirely subordinate'[8] कहने का तात्पर्य यह है कि संगीत और पद आपस में गहराई से जुड़े हुये हैं. और एक संगीतमय माहौल के रूप में पूरी तरह से जुड़े हुये हैं, जिसमें दोनों में पद राग संगीत के विपरीत प्राथमिक संदेश देता है, जहाँ संगीत प्राथमिक है वहाँ पर शब्द को थोड़ा गौंण रूप से प्रयोग किया जाता है और जहाँ शब्द को प्राथमिकता दी जाती है वहाँ संगीत को थोड़ा गौंण कर दिया जाता है' जिससे क़व्वाली में बराबर का संतुलन बना रहता है.

'मअदनुलमुसीक़ी' नामक ग्रन्थ में मुहम्मद करम इमाम ने गायको के दो वर्ग किये हैं एक 'कलावन्त' जो आलाप, ध्रुपद, धमार, सादरा गाते हैं. दूसरे 'क़व्वाल' जो ख़्याल, क़ौल, तराना आदि गाते हैं. दूसरे वर्ग के गायक अमीर ख़ुसरो द्वारा रचित रचनाओं का गायन करते हैं.

वास्तव में क़व्वाली कोई पृथ्क विधा नहीं है, ग़ज़ल को ही सामूहिक रूप में गाने का एक ढंग है. ग़ज़ल में भी तसव्वुफ़ की ग़ज़ले, जो सूफ़ियों द्वारा गाई और रची गई. उनको सबसे पहले क़ौल या क़व्वाली के लिये चुना गया. तसव्वुफ़परक ग़ज़लों में मोईनुद्दीन चिश्ती (1235ई0), बख़्तियार काकी (1236ई0), फ़रीदुद्दीन गंजशकर (1256ई0)

तथा निज़ामुद्दीन चिश्ती (1324ई0) जैसे सूफ़ी संतों ने क़व्वाली का अभूतपूर्ण योगदान दिया. चूँकि इन सभी सूफ़ी संतों ने भारत में रह कर ही रचनाएँ की, इसलिये अन्य विधाओं की तरह पूर्ण रूप से फ़ारसी पर आश्रित न रह कर उन्होंने यहाँ की प्रचलित भाषाओं को भी आत्मसात किया. तसव्वुफ़परक ग़ज़लों की रचना भी क्लिष्ट फ़ारसी में न करके इस समय के प्रचलित 'हिन्दवी' भाषा में की. कहा जाता है, ऐसी भाषा का मिश्रण जिसमें हिन्दी और थोडी सी फ़ारसी का पुट था और जिसमें ग़ज़लें और सूफ़ियाना क़लाम कहे गये, आगे चलकर 'उर्दू' बना. संगीत की दृष्टि से भिन्न-भिन्न रागों में गायी जाने वाली क़व्वाली ने धीरे-धीरे जनसाधारण को रागों से परिचित करा दिया. अन्यथा ध्रुवपद और प्रबन्ध गायकों तक सीमित शास्त्रीय संगीत की शैली जनसाधारण से बहुत दूर थी. क़व्वाली में बोलबाँट, बोलबनाव, लयकारी आदि चमत्कारिक रूप से प्रयुक्त होती हैं."[9]

क़व्वाली के इसी सांगीतिक रूप को प्रस्तुति के सन्दर्भ में रेगुला बुर्खात कुरैशी का कहना है- 'Experiencing qawwali also means observing a ritual built around the core of qawwali music. In an assembly where spiritual dignitaries are visibly dominant and everyone knows his place, the mystical quest his pursued in accordance with proper from and under a sufi leader who controls both audience and musicians. But in pursuing his personal quest, each listener responds to the music in his own way, according to his inner needs and the mood of the moment.'[10] क़व्वाली का जो सांगीतिक वातावरण है उस अनुष्ठानिक वातावरण को समझना बहुत जरूरी होता है. इसमें यह भी आवश्यक है कि वो दरबार जो है उस दरबार में जो वहाँ के प्रमुख हैं उनका स्थान सबको मालूम होना चाहिये और अपनी पुकार को उनके माध्यम से पहुँचाना और इसी में क़व्वाली इन सब के साथ चलती है. वो जो करिश्मयी खोज है अल्लाह की खोज है ईश्वर व पैगम्बर का या उनके बुजुर्गों का उसमें जो मुख्य सूफ़ी लीडर व गुरू होते हैं उनके पीछे-पीछे सारे कलाकार एवं श्रोता वो उसको प्राप्त करते हैं जिसमें सूफ़ी गुरू होते हैं उनको माध्यम व जरिया बनाते हैं. जिसमें वो जो कहेंगे वही बात सत्य मानी जाती है. और उस आध्यात्मिक वातावरण में रम जाते हैं और उनके पीछे-पीछे जो उनका व्यक्तिगत खोज होता है वो हर श्रोताओं पर अभिव्यक्त करते हैं. उस सांगीतिक वातावरण के जरिये जो श्रोता अपनी आंतरिक कामना के साथ जाते हैं और उस दरबार के वातावरण को अनुभूत करके वो अपनी दुवाओं को प्राप्त करते हैं.

क़व्वाली का प्रायोगिक साहित्यिक पक्ष - क़व्वाली के अगर साहित्यिक पक्ष की व्याख्या की जाये तो साहित्य ही क़व्वाली की बुनियाद को कायम रखता है. जिसमें डॉ॰ पूर्णिमा केलकर का कहना है, क़व्वाली का साहित्यिक पक्ष -: छन्द, रस, अलंकार इन तीनों के आधार पर ही कायम है.[11]

1. छन्द- जिसके कारण काव्य के पदों में गति दिखाई दे वो छन्द है. इसी क्रम में लय के अनुसार किसी काव्य को निश्चित गति और यति के आधार पर बांधना ही छन्द है. क़व्वाली के जो छन्द होते हैं वो इस प्रकार से प्रयोग में आते हैं – गति+लय+ताल+यति+छन्द. छन्दों का प्रयोग करते समय यति देखी जाती है. कहाँ पर गति और कहाँ पर यति होना है इनका विशेष ध्यान दिया जाता है और उसी के आधार पर लय को देखा जाता है. ज्यादातर क़व्वाली शुरू में

विलम्बित फिर मध्य और अंत में द्रुत लय में आकर पुनः स्थाई में आ जाते हैं जिस लय में क़व्वाली की शुरूवात हुई रहती है वहीं पर समापन करते हैं.

2. रस- असल क़व्वाली जहाँ पर धार्मिक व सूफ़ियाने कलामों का समावेश करके क़व्वाली की गायन प्रक्रिया करते हैं, वहाँ पर शान्त रस का प्रयोग किया जाता है. कुछ क़व्वालियाँ प्रायः श्रंगार रस से प्रारम्भ की जाती हैं और कुछ क़व्वाली में वीर रस का प्रयोग होता है. जैसे मराठी में शिवाजी के गुणगान में क़व्वाली लिखी गई है. जिसे पोवाड़ा के नाम से जाना जाता है और कहीं - कहीं पर वियोग का भाव जब आता है तो वहाँ पर विप्रलम्भ करूण रस का भाव मिलता व दिखाई देता है. और जहाँ पर शान्त रस का भाव होता है वो धार्मिक स्थल व सूफ़ियाने इक़राम की क़व्वाली में पाई जाती है.

3. अलंकार- जब किसी काव्य व सूफ़ी कलाम में उसकी शोभा व सौन्दर्य को बढ़ाना होता है तो उसमें अलंकारों का प्रयोग किया जाता है. जैसे एक ही अक्षर बार - बार आने पर वहाँ अनुप्रास अलंकार का प्रयोग होता है और जहाँ पर एक शब्द के दो अर्थ निकले वहाँ पर श्लेष अलंकार का प्रयोग होता है. और किसी की समानता करने से उसमें उपमा अलंकार का प्रयोग इन अलंकारों का प्रयोग क़व्वाली में बख़ूबी तरीके से किया जाता है.

4. लोक भाषाओं का प्रयोग- क़व्वाली का जहाँ-जहाँ सिलसिला चला वहाँ पर उस क्षेत्र की लोक भाषाओं का प्रयोग किया गया जिससे क़व्वाली के प्रति लोग जागरूक व उसमें जो सन्देश दिया जाये उसे समझ सकें और उसका अपने जीवन में धारण कर सकें. क़व्वाली में प्रयोग की जाने वाली मूल लोक भाषाऐं - उर्दू, फारसी, खड़ी बोली है.

अमीर ख़ुसरो के समय में एक भाषा का और इज़ाफ़ा हुआ जिसे पूर्वी भाषा के नाम से जाना जाता था और हिन्दुस्तान के बटवारे से पहले कुछ भाषाओं का प्रयोग किया गया जो इस तरह मिलती है -: सरायक़ी, बलूच, पश्तो फिर आगे चलकर लोगो ने क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग किया हैं-: ब्रज बोली, अवधी बोली, राजस्थानी बोली, मराठी बोली (क़व्वाली - पोआड़ा), पंजाबी बोली, पहाड़ी बोली, बुन्देली बोली, भोजपुरी बोली.

निष्कर्ष - इस तरह क़व्वाली की परम्परा में क्षेत्रीय भाषाओं का पूर्ण रूप से प्रयोग किया गया और उस क्षेत्र की भाषाओं के माध्यम से क़व्वाली में लुत्फ़ भी उठाया गया जिससे कलाकार के साथ-साथ श्रोता भी उस गायकी के प्रति अपना रुझान भी व्यक्त करने लगे. उपरोक्त लेख से यह ज्ञात होता है कि क़व्वाली गायन शैली का सांगीतिक पक्ष स्वर,राग, ताल व लय इत्यादि से बद्ध होकर उस गायकी की शास्त्रीयता एवं क्षेत्रीय सांगीतिक परिवेश को पिरो कर अपनी एक अलग क्षटा स्थापित करता है, वहीं पर साहित्यक पक्ष भाषाओं के बंधनों से मुक्त रस, छन्द, एवं अलंकार एवं क्षेत्रीय भाषाओं के समन्वय से अलंकृत होकर श्रोताओं को मुग्ध करता है. जिसमें देखा जाये कि सांगीतिक एवं साहित्यिक दोनों पक्षों के कलेवर को मिलाकर, इस आधार पर रूहानी तसव्वुफ़ परक क़व्वाली गायकी का उज़ूम वर्तमान में भी अपने परवान पर है वो चाहे खानकाह हो या सूफ़ी महफ़िल हो. इसी आधार पर कुछ क़व्वाली का

लिंक नीचे दिया जा रहा है जिसमें सांगीतिक एवं साहित्यिक दोनों पक्षों के बारीकियों को कलाकारों द्वारा दर्शाया गया है.

क़व्वाली के बोल	राग	ताल	लिंक
भला हुआ मोरी गगरी फूटी	खमाज-काफी	कहरवा	https://youtu.be/Rjnorsnabm8
हर लहजा बा सकल	खमाज-पहाड़ी	दादरा	https://youtu.be/NoHCQEUja4Y
कैसा नाच नचाया ढ़ोला	पहाड़ी-खमाज	दादरा	https://youtu.be/s-CCvyNH8Ro
किरपा करो महाराज मोइनुद्दीन	काफ़ी	कहरवा	https://youtu.be/AeiPdMIC7QM

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. सिंह, तोयज कुमार; "सूफ़ी संगीत: नई रोशनी"; संगीत; वर्ष 80 अंक 10 हाथरस: संगीत कार्यालय; अक्टूबर, 2014; पृ० 13.
2. शमीम; "क़व्वाली का उद्गम, विकास एवं शैलियाँ सूफ़ीवाद के सन्दर्भ में"; अप्रकाशित शोध-प्रबंध; दिल्ली: दिल्ली विश्वविद्यालय; पृ०32.
3. स्वामी, वी० के०; "संगीत की एक विधा जो अब विकृत हो रही है"; *संगीत (क़व्वाली अंक);* वर्ष 33; अंक 8 ; हाथरस: संगीत कार्यालय; जनवरी-फरवरी 1979; पृ० 50.
4. Qureshi, Regula Burckhardt; Sufi Music of India and Pakistan; first edition; New York: Cambridge University, 1986; P.108.
5. शमीम; 'क़व्वाली का उद्गम, विकास एवं शैलियाँ सूफ़ीवाद के सन्दर्भ में' 16461; अप्रकाशित शोध-प्रबंध; दिल्ली: दिल्ली विश्वविद्यालय; पृ०32-33.
6. Qureshi, Regula Burckhardt; Sufi Music of India and Pakistan; first edition; New York: Cambridge University, 1986; P.56.
7. शमीम; 'क़व्वाली का उद्गम, विकास एवं शैलियाँ सूफ़ीवाद के सन्दर्भ में' 16461; अप्रकाशित शोध-प्रबंध; दिल्ली: दिल्ली विश्वविद्यालय; पृ०34-35.
8. Qureshi, Regula Burckhardt; *Sufi Music of India and Pakistan*; first edition; New York : Cambridge University, 1986; P.46.

9. सहगल, सुधा; "उर्दू भाषा की प्रमुख सांगीतिक काव्य-शैलियाँ"; *संगीत;* वर्ष 69; अंक 12; हाथरस: संगीत कार्यालय; दिसम्बर 2003; पृ० 16-17.
10. Qureshi, Regula Burckhardt; *Sufi Music of India and Pakistan*; first edition; New York: Cambridge University, 1986; P.05.
11. साक्षात्कार: पूर्णिमा केलकर. संस्कृत विभाग कला संकाय, माध्यम, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़.

*****